© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श

डॉ०राममेहर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
छोटूराम किसान पी०जी० कालेज, जीन्द

इसमें तो कोई शब्द की गुंजायश नहीं है कि भारत में परिवार की स्थिति अब एकदम विभिन्न प्रकार की होती जा रही है। आजकल नारी की कर्मभूमिका जो रसोई और शय्या की धुरी में केन्द्रित थी, अब बदल रही है। वह घर के बाहर की भूमिका को बाहर वाले कामधन्धों को सहजता से अपरा रही है और धीरे-धीरे घर की नीरस मजदूरी से स्वतंत्र भी हो रही है। कुछ तो घर की चारदीवारी से बाहर छलाँग लगाने के कारण और कुछ मनोविज्ञान, जीवशास्त्र, समाजशास्त्र की खोजों के परिणामस्वरूप सेक्स के प्रति शुचितावादी निष्ठा को भी ठेस लगी है, धार्मिक बन्धन ढीले हुए हैं। मर्यादित जीवन के मायने बदले हैं। लज्जा जिसे नारी का प्रधान गुण माना जाता था उसके स्थान पर लज्जाविहीन सौन्दर्य के मूल्य में बढ़ोतरी हुई है। परिणामस्वरूप जीवनचर्या काफी हद तक बदल गई है। रात्रि क्लबों की संख्या निरन्तर बढ़ी है और घटी है संकोच वृति ऐसे स्थानों पर जाने की। बदला परिवेश और परिवर्तित प्रतिमान फले-फूले हैं।

साठोत्तरी कविता अर्थात् सातवें और आठवें दशक की कविता में नारी संबंधी धारणाओं में अन्तर आया है।

वैसे मोटे तौर पर यह पहचान भारतेन्दु काल से ही आरम्भ हो गयी थी। विधवा विवाह का समर्थन, बाल विवाह का विरोध आदि सर्वप्रथम हमें इसी काल में सुनायी देती है। द्विवेदी युग में हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त ने अपने ढंग से राधा, उर्मिला और यशोधरा को सामने रखा। नारी संबंधी काव्यात्मक दृष्टि का क्षेत्र विस्तृत किया। पंत ने 'नारी' और 'नर' की छाया जैसी कविताओं की रचना की और निराला ने 'विधवा' और 'तोड़ती पत्थर'

जैसी कविताएं की। दिनकर की 'उर्वशी' और भारती की 'कनुप्रिया' शायद और भी सशक्त और कलात्मक ढंग से इस समस्या को रेखांकित करती है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

लेकिन यह कहना निराधार न होगा कि कविता में शायद पहली बार नारी की वास्तविक और जीवन सच्चाई को उजागर करने का साहस तथा उस पर पड़ने वाले सामाजिक, आर्थिक और नैतिक दबावों की पहचान का सिलसिला सन् 40 से आरम्भ होता है। यद्यपि इसे भी पुराने संस्कारों से सम्पूर्ण छुटकारा नहीं मिलता। नायी शहों के अन्वेषण में 'तार सप्तक' के कवि छायावादी आदतों से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाते। इसका सर्वाधिक प्रमाण उनकी प्रेम संबंधी कविताएं हैं। ये केवल नारी के लिए उपमान में बदलते हैं लेकिन कुल मिलाकर वायवीयता से मुक्त नहीं हो पाते हैं। गिरजाकुमार माथुर न तो और भी गजब ढाया। इनकी कविता का मूल चरित्र रात की मिठासों, रंगीन ताजा फूलों और मृदुवृक्ष की गहरायी के इन्द्रजालों से निर्मित होता है। वैसे इन्होंने एकाध 'प्रौढ़ रोमांस' जैसी कविता भी लिखी है, शायद जायका बदलने के लिए ही। अन्यथा चूड़ी का एक टुकड़ा लेकर रात-रात भर सोने का उपक्रम चलता रहा है। पाँचवें और छठे दशक के अधिकांश कवि रूमानियत से घिरे रहे। इनकी कविता में स्त्री प्रायः मुलायम, रंगीन और दिलचस्प है। हाँ-इन कवितयों में कुछ ताकतवर नाम भी हैं-जैसे शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि।

खैर, इनसे अगले कवियों ने कविता को उस ओर मोड़ा जहाँ नारी-संबंधों के सूक्ष्म तथा ठोस ब्यौरे और साथ ही प्रासंगिक सार्थक और वास्तविक चरित्र देखने को मिलते हैं। इस सन्दर्भ में रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, विजयदेव नारायण, साही, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अशोक वाजपेया, धूमिल, कमलेश, विष्णु खरे, जितेन्द्र कुमार इत्यादि की कविताएं और व्यस्क काव्य दृष्टि उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताओं में प्राप्त नारी गैर रूमानी, ठोस वास्तविक और अन्ततः समय की पहचान देती हैं जैसे-

एक सम्पूर्ण स्त्री होने से पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजारते हुए
उसने जाना की प्यार
घनी आबादी वाली बस्तियों में
मकान की तलाश है।

यह जीवन का कटु सत्य उजागर करती कविता का उदाहरण है।

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

इसी प्रकार शहरी परिप्रेक्ष्य में एक बहुत बड़ा परिवर्तन संयुक्त परिवार का क्रमशः ह्रास है। आकार में छोटा होने के कारण वह अब भौतिक दबावों के भी अधिक निकट है जिससे मानवीय संबंधों में गहरा तनाव भी उत्पन्न हुआ है। ऐसी ही एक कविता में जिंदगी की जटिलताओं तथा आर्थिक दबावों से घिरी नारी के प्रति संवेदनात्मक सहानुभूति प्रकट की गई है।

देखता हूँ मेरे गांव की पहाड़ी
बूढ़ी नहीं हुई
मेरी पत्नी के गले की मोती
जैसा कि तैसा है
बहन बेचारी
दुल्हन से माँ हुई
माँ से मास्टरनी

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सभी नये कवि भावावेश जन्य अतिरंजित मुद्राओं के शिकार हुए हैं। कुछ कविओं ने हमारी पहचान को धुंधलाया है। इनके यहां स्त्री जीभ और जांघ से इतर किसी संबंध का अनुभव नहीं देती। कुछ कविताएं तो नारी संबंधों के विकराल नग्नता में रूपान्तरित करती दीखती है। जगदीश गुप्त इस मामले में और भी अगले निकल जाते हैं। गुप्त जी 'युग्म' में पूरी औरत तलाशने निकले थे।

शिव की भुजाओं से
धरती पर
खण्ड खण्ड होकर गिरी
जब से रूती की देह
तभी से जारी है अथक खोज
नारी के पूरे व्यक्तित्व की।

लेकिन पूरी औरत को तलाशते-तलाशते नारी के नेत्र चुम्बन की खट्टी मीठी अनुभूति में निमग्न हो गये-

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

कच्चे आम की फाँक सी
उभरी पड़ी आँखें तुम्हारी
होठों को अजब सा
खट्ठा मिट्ठा स्वाद दे गयी।

कुल मिलाकर इस दौर के कवि नारी को ठोस तथा वास्तविक स्तर पर चरितार्थ करते हुए उसे कविता में विश्वसनीय बनाते हैं लेकिन दूरी ओर इसे अविश्वसनीय भी बना डालते हैं।

लेकिन सातवें दशक के अन्तिम दौर की कविता और आठवें दशक की कविता हमें इससे भी व्यस्क काव्य दृष्टि का प्रमाण देती है। इस दौर की कविताओं में सौंदर्य प्रणय तथा सेक्स आदि प्रसंग रूमानी लिजलिजाहर, भावुकता का अनुभव नहीं देते बल्कि इन प्रसंगों को ठोस तथा जीवन्त ढंग से चरितार्थ करते हैं। इन कवियों ने रचना कर्म को गहन तथा व्यापक मानवीय दायित्व से जोड़कर समकालीन नारी की विपत्तियों से साक्षात् को जोखिम उठाया है। अपने सहुलियत के लिए जीवित वास्तविकता से कतराना और उसे सरलीकृत करके देखना सही तथा अप्रासांगिक हो जाना है। रचना कर्म की एक बुनियादी अनिवार्यता है कि वह नारी और उसके भाव प्रसंगों के समझ की जटिलता, विविधता में देखने, समझने तथा परिभाषित करने का बीड़ा उठाये।

लेकिन साठोत्तरी कविता का यह दुर्भाग्य भी है कि इसके बहुत से युवा कवि लफ्फाजी, फतवेबाजी और क्रान्तिकारी तेवरों के जरिये आतंक पैदा करने की आदत से छुटकारा नहीं पा सके हैं। वे उसी पुराने खूंटे से बंधे हैं, वही कोल्हू है-और ऐसी स्थिति में कवि के अनुभव का विस्तार नहीं हो पाता।

वास्तव में सातवें और आठवें दशक के कवि के सामने सरलता और काव्य की दो धाराएं है-वह ज्यों ही अपने रचना कर्म को गहन और व्यापक मानवीय दायित्व से जोड़ता है और समकालीन नारी की विपत्ति से साक्षात् का जोखिम उठाता है उसके कुसंस्कार उसे फिर यौन योग के गड्ढ़े में गिरा देते हैं। नया कवि इससे सावधान रहता है। सौंदर्य और जीवन को अभिन्न करके भी देखता है। इस दशक के अनेकों कवि इस ओर अग्रसर हुए हैं। उनकी दृष्टि से उनकी कविता प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी भी बनी है। जैसे-

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

भूल जाओ

कभी तुम सुन्दर थी

इन फेट पपड़ाये अधरों पर कभी रस

छलक छलक पड़ता था।

(शरद देवड़ा)

सातवें और आठवें दशक की कविता के दौर में ग्रामीण बाला में अभिजात्य संस्कारों के अभाव का बोध होता है उन्हें कृशांगी नगर बाला ही अधिक रूचती है। छोटे-छोटे हाथ पैर जो मेहनत न करने से पतले पड़ गए हैं, इन कवियों के आकर्षण का केन्द्र बनते हैं। इस दौर के कुछ लेखन में स्त्री पुरूष के संबंध के सिलसिले में उत्पन्न भयावह स्थिति उभरती है जिसमें मृत्यु, संभोग, योनि, तनाव, यांत्रिकता जैसे असंख्य विम्ब विकसित हुए हैं। ये कवि टूटते और खोजे जा रहे संबंधों का वर्णन करते हैं या यूं कहें कि मानवीय संबंधों को विकराल नग्नता में ये कवि प्रस्तुत करते हैं। नारी पुरूष संबंधों का घिनौना रूप साठोत्तरी कविता में अभिव्यंजित हुआ है। प्रणय को भी व्यंग्य-विडम्बना के साथ ग्रहण करते हुए उसका फूहड़ अश्लील वर्णन ये करते हैं। कहीं कहीं तो प्रणय को सामान्य संघर्ष और क्षणिक तृप्ति के लिए स्वीकारा गया है। कुछ एक कवियों को छोड़कर स्त्री-पुरूष संबंध विकृति के स्तर पर पहुंचे हैं।

कुछ भी हो, विकासोन्मुख काव्य धारा में तत्युगीन परिवेश एवं मानसिकता के अनुरूप चिन्तन स्थान पाता ही है। विचारधारा में स्वस्थ्य अस्वस्थ्य, गलत-सही, खरे-खोटे अनेक प्रसंग जुड़ जाते हैं। समय की तटस्थ-निर्णायकता सभी अधूरे मूल्यों को समाप्त कर देती है। समय एकमात्र सच्चा मापदण्ड है। समय बदला धीरे-धीरे सोच भी बदली। परवर्ती काव्यधाराओं ने मानव, मानव के बीच खत्म होते जा रहे रिश्तों, संस्कृति के निरन्तर छीजते तत्वों, यहां तक कि मानवीय गुणों के खोजे जा रहे अवसाद को अपना स्वर दिया। साथ ही स्वर दिया कोमलांगी नारी के स्थान पर समाज और राष्ट्र के मामलों में भाग लेने वाली नारी की प्रतिष्ठा को। यानि पाउडर पुते विलासनिष्ठ नारी के मुख से सादे मुखवाली कर्त्तव्यनिष्ठ नारी की स्थापना हुई। कविता में केवल नारी का सामान्यीकरण नहीं हुआ अपितु उसकी आन्तरिक जटिलता को भी समझा जरूरी माना गया और इसी आन्तरिक जटिलता को समझना

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 09 | October – December 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

उसकी जिंदगी की समस्या को समझना है। वस्तुतः हमें वास्तविकता के साक्षात के क्रम में अपनी संवेदनाओं और सामाजिक संबंधों की जांच परख करते हुए उस जमीन की खोज करनी है जो आज की नारी की पूर्ण पहचान में सहायक सिद्ध हो। लेकिन ठोस समस्याओं के विरोध में कल्पित समस्याओं को रख देने से समस्या का समाधान नहीं होता। सदी बदल चुकी है, बदली सदी का दूसरा दशक दूसरे वर्ष में प्रविष्ट हो चुका है। हमारे जीवन में प्रतिक्षण बदलाव आ रहे हैं। जीवन की तरह कविता भी बदली है। सूचना और संचार ने हमें एक दूसरे के करीब ला दिया है। भले ही अति आधुनिक हम विश्वग्राम की सभ्यता में जी रहे हैं, लेकिन काव्य में हमारे रिश्ते को समाप्त नहीं कर सकता। उन्नीसवीं सदी में एक उजड़ती, तहस-नहस होती दिल्ली में भी मीर और गालिब सम्भव हो सके थे तो यकीनन आने वाले समय में भी बदलावों में भी सार्थक रिश्ता बना सकने में कविता सफल होगी।

सन्दर्भ

- ओल्ड इंग्लिश बेलेड - पृ0 66
- इं एण्ड स्का0 पा0 इ0 - पृ0 10- 11
- इं0 एण्ड स्का0 पा0 वै0 - इन्ट्रोडक्शन - पृ0 11
- द बैलेड - सिजविक - पृ0 27
- इंग्लिश एण्ड स्का0 वै0 - इन्ट्रोडक्शन - पृ0 21
- विस्तार के लिये देखिए- ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स - इन्ट्रोडक्शन - फुटनोट
- रेलिक्स आँव एन्शिएन्ट इंग्लिश पोइट्री - इन्ट्रोडक्शन
- इं0 एन्ड स्का0 पा0 बैलेड्स-इन्ट्रोडक्शन - पृ0 23
- एन्साइक्लोपीडिरूा अमेरिकाना- बैलेड्स - पृ0 96
- द पापुलर बैलेड - पृ0 135 - 287